प्रवचन

परमहंस श्री हंसानंदजी सरस्वती दण्डी स्वामी जी

विषय तालिका

CD # 57 * JAN – FEB 2013 *

SN	Title	Min	Coding			Contents	
1	01 Jan + Feb	25	⊕	⊕		संसार में किसी भी कार्य के लिये **निमित्त** और **उपादान** दोनों कारण की आवश्यकता होती है। उपादानकारण का कार्य के कण-२ में प्रवेश होता है जैसे माटी का घड़े में, पर निमित्तकारण कार्य सम्पन्न होने पर अलग हो जाता है। निमित्तकारण में 'ज्ञान-इच्छा -कर्म' अथवा 'बुद्धि-मन-इन्द्रियाँ' तीनों की आवश्यकता होती है .. **गर्भोपनिषद का सविस्तार वर्णन** ..	
2	02 Jan + Feb	40	⊕	⊕	⊕	**भगवान जगत के अभिन्न निमित्तोपादान कारण है :-** अर्जुन, जगत का पिता, माता, धाता और पितामह भी मैं ही हूँ और जानने योग्य ओंकार तथा ओंकार का विस्तार - गीता रामायण वेद पुराण भी मैं ही हूँ। इन सबसे जानने योग्य भी मैं ही हूँ यानि मैं ही साध्य हूँ और मैं ही साधन भी। जगत का निमित्त और उपादान दोनों कारण मैं ही हूँ। मैं ही जगत बनाता हूँ और अपनी माया से स्वयं ही जगत-रूप बन जाता हूँ। अपनी इच्छा से ही मैं प्रकट होता हूँ व इच्छा करता हूँ तो आकाश, वायु आदि पंचभूत व संपूर्ण जगत - जा०स्व०सु० / स्थू०सू०का० शरीर - बन जाता है अर्थात् कार्य-कारणरूप समस्त प्रपंच मैं ही बन जाता हूँ। मैं परम सत्य हूँ पर ये जगत बिना सामग्री के मेरी इच्छा/मायाकृत जगत सत्य नहीं है। ये जगत भगवान का विश्व-विराटरूप ही है अतः निर्गुण-निराकार भी मैं हूँ और सगुण-साकार भी मैं हूँ।	
3	03 Jan + Feb	32	⊕	⊕		हनुमानजी ने भगवान राम से सभी जीवों की ओर से भ०राम के निनि० स्वरूप जानने की प्रार्थना करते हुए कहा कि हे प्रभु आपके निनि० स्वरूप को जानते ही जीव सद्यमुक्ति को प्राप्त होजाता है ऐसा मैंने शास्त्रों से सुना है। तब भगवान राम के कहने पर सीताजी भग० राम का साक्षी-चेतन निनि०स्वरूप इस प्रकार निरूपण करती हैं **-'रामं विद्धि परम ब्रह्म सच्चिदानंद अद्वयं..'**	
4	04 Jan + Feb	36	⊕	⊕		**'पिता हमस्य जगतो माता धाता पितामह..'** अर्जुन, जगत का पिता, माता, धाता और पितामह भी मैं ही हूँ व मुझे जानने का साधन ओंकार तथा ओंकार का विस्तार-गीता रामायण वेद पुराण भी मैं ही हूँ। इन सबसे जानने योग्य भी मैं ही हूँ यानि मैं ही साध्य हूँ और मैं ही साधन भी। व्यवहार जगत में संतानोत्पत्ति के लिये माता-पिता दोनों की आवश्यकता होती है किन्तु अर्जुन! मेरी एक इच्छा शक्ति है जो असम्भव को सम्भव कर देती है, उसी इच्छा शक्ति से मैं जो चाहता हूँ बन जाता हूँ जैसे राम, कृष्ण, विष्णु आदि अथवा विश्वविराट - केवल इच्छा से बन जाता हूँ, मुझे पत्नि की आवश्कता नहीं होती। इच्छा/माया से जो चीज़ बनती है उसमें सामग्री की आवश्यकता नहीं होती, वह झूठी होती है .. **दृष्टांत - नट एवं देवासुर संग्राम की कथा** ..	1
5	05 Jan + Feb	38	⊕	⊕	⊕	**'पिता हमस्य जगतो माता धाता पितामह..'** अर्जुन, जगत का पिता, माता, धाता और पितामह भी मैं ही हूँ व मुझे जानने का साधन ओंकार तथा ओंकार का विस्तार-गीता रामायण वेद पुराण भी मैं ही हूँ। इन सबसे जानने योग्य भी मैं ही हूँ यानि मैं ही साध्य हूँ और मैं ही साधन भी। मैं कारण हूँ व ये जगत कार्य है इसलिये जगत मुझसे अभिन्न है जैसे तरंगें जल से भिन्न नहीं हैं वे जल ही हैं। मुझ अनंत अखंड आनंद रूपी समुद्र में मायारूपी पवन के निमित्त से बहुत सी विश्व-ब्रह्माण्ड रूपी लहरें उठती और लय होजाती हैं व पुनः शान्त महासागर की भाँति एक सच्चिदानंद ही रहता है। ज्ञानी लोग तरंगों में जल ही देखते हैं क्योंकि कार्य अपने कारण से अभिन्न होता है, कारण सत्य होता है तथा कार्य नाम-रूप कल्पना है अतः सारा जगत ब्रह्म ही है, जैसे सभी आभूषण स्वर्ण ही है। तत्त्वदर्शी स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सबमें मेरा ही दर्शन करते हैं-**'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या'**	2
6	06 Jan + Feb	26	⊕	⊕	⊕	**सीताजी द्वारा भगवान राम का निनि० स्वरूप निरूपण .. 'रामं विद्धि परम ब्रह्म सच्चिदानंद अद्वयं..'** हे हनुमान राम का निनि० स्वरूप परम ब्रह्म है यानि प्रकृति से परे, सबसे बड़े, असीम, सत्-चित्-आनंद, एक अद्वितीय, सम्पूर्ण नामरूप उपाधियों से मुक्त हैं, वे सबके भीतर रहते हुए 'आत्मा' और बाहर परिपूर्ण 'परमात्मा' कहलाते हैं। वे इन्द्रियातीत, केवल सत्य सत्ता मात्र, शान्त आनंद के महासागर, निर्विकार, मायातीत एवं आकाशवत् सर्वव्यापक है तथा सभी प्राणियों की आत्मा या स्वरूप है। वे स्वयं प्रकाश है जो सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करते हैं। **'जीव और ब्रह्म अभेद हैं'**- यही यर्थाथ ज्ञान है। **भ०राम द्वारा आत्मा, अनात्मा, परमात्मा का निरूपण** .. महाकाश/बुद्धि के बाहर ब्रह्म/ब्रह्म = परमात्मा .. घटाकाश/बुद्धि-अवच्छिन्न ब्रह्म/कूटस्थ = आत्मा .. प्रतिबिम्बाकाश / बुद्धि में प्रतिबिम्बित आकाश / साभास बुद्धि, जो कर्ता-भोक्ता बनता है ये मिथ्या है = अनात्मा ..	1 Imp
7	07 Jan + Feb	34	⊕			**गीता : ४/१३-१४ एवं ५-७::** अर्जुन ! सत्-रज-तम तीन गुण एवं कर्म के अनुसार ४ वर्ण की सृष्टि मैंने की है। ये गुण-कर्म विभाग, मनुष्य, पशु- पक्षी, वृक्ष-पर्वत तथा भूमि आदि, प्रकृति में सर्वत्र व्याप्त है। माया से मैं इनका कर्ता भी हूँ पर वास्तव में मैं अविनाशी अजन्मा और अकर्ता हूँ 4 मेरे और तेरे अनेक जन्म हो चुके हैं, मैं उन्हें जानता हूँ पर तुम नहीं जानते। इस पर अर्जुन ने कहा - आपने पहले कहा था कि ईश्वर और जीव का कभी जन्म नहीं होता - 'न जायते म्रियते वा कदाचित्..'→ **"वक्तोत्पाघात् दोष"** 5 श्रीभगवानुवाच :: जीव और ईश्वर अजन्मा है यह परम सत्य है, मैं सबकी आत्मा हूँ व अजन्मा अविनाशी होते हुए भी अपनी प्रकृति को अपने वश में करके अपनी माया से प्रकट हो जाता हूँ पर वास्तव में मेरा जन्म नहीं होता है 6 जब-जब धर्म की हानि व अधर्म की वृद्धि होती है, जब दुष्ट-दुराचारी बढ़ जाते हैं व साधु-ब्राह्मण को दुःख देते हैं तब-तब मैं अपनी माया से नि०नि० से स०सा० रूप में अवतरित होता हूँ।	
8	08 Jan + Feb	35	⊕	⊕	⊕	**सीताजी द्वारा भ०राम का निनि० स्वरूप निरूपण ::** 'रामं विद्धि परम ब्रह्म सच्चिदानंद अद्वयं..' हे हनुमान! राम का निनि० स्वरूप सच्चिदानंदघन ब्रह्म है। ये एक अद्वितीय आदि-अन्त रहित, ज्ञान-सूर्य, आनंद-सिन्धु, सम्पूर्ण उपाधि रहित किन्तु उपाधियों में आकाशवत् व्याप्त सत्य मात्र हैं। ये अगोचर निर्मल निर्विकार मायातीत् शान्त केवल आनंद स्वरूप स्वप्रकाश हमारी तुम्हारी आत्मा हैं। जो निनि० स्वरूप राम का है वही जीव का भी है क्योंकि जीवात्मा-परमात्मा अभेद है .. **सीताजी का स्वरूप ::** 'मामू विद्धि मूल प्रकृतिं..' जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार करने वाली मैं मूल प्रकृति हूँ, मुझे ही माया कहते हैं किन्तु मुझ माया का मायापति राम से कभी सम्बन्ध नहीं होता। राम के सानिध्य मात्र से मैं जगत रूप में परिणित हो जाती हूँ जैसे चुम्बक के सानिध्य में लोहे में कम्पन उत्पन्न हो जाता है अतः ये जगत मुझ माया का परिणाम तथा ब्रह्म का विवर्त है .. ३/२७ - सभी कर्म दे०इ०म०बु०-प्रकृति में होते हैं, राम अकर्म हैं **कर्म के ५ हेतु** - 1 अधिष्ठान-देह 2 कर्ता-साभास अन्तःकरण/बुद्धि 3 करण -इन्द्रियाँ 4 चेष्टा-प्राण 5 दैवम्-इन्द्रियों के अनुग्राहक देवता	2 Imp
9	09 Jan + Feb	41	⊕	⊕	⊕	सृष्टि के आदि में एक अद्वितीय ब्रह्म ही था उसमें नानात्व कुछ नहीं था फिर उसमें रज्जु में मिथ्या सर्पवत् और पुरुष में छाया-वत् स्वयं ही माया का प्रादुर्भाव हो गया। छाया जड़ है उसे ज्ञान नहीं है पुरुष ही उसे देखता है, छाया पुरुष से उत्पन्न होती है, पुरुष के आश्रित रहती है व उसी में लीन हो जाती है। माया ने विद्या-अविद्या का रूप धर लिया और फिर ब्रह्म के आभास को धारण कर क्रमशः सर्वज्ञ ईश्वर एवं अल्पज्ञ जीव कहलायी। व्यापक ब्रह्म बिजली के समान है तथा विद्या-अविद्या उपाधि बल्ब के समान प्रकट करने के साधन हैं। दोनों में उपाधि भेद के कारण सर्वज्ञता-अल्पज्ञता होती है जैसे सूर्य और दीपक में प्रकाश भेद। ईश्वर और जीव दोनों ही कल्पित हैं अतः ये जगत भी कल्पित है, केवल पुरुष यानि ब्रह्म ही सत्य है। फिर ईश्वर-जीव दोनों ने सृष्टि की ईश्वर सृष्टि :- 'ईक्षण से प्रवेश पर्यन्त' अर्थात् ई० ने इच्छा की कि एक से अनेक हो जाऊँ फिर स्वयं ही जीवरूप से उनमें प्रवेश कर गया। जीव सृष्टि :- 'जा०-स्व०-सु०-बन्ध-मोक्ष' की कल्पना जीव ने कर ली। कल्पित वस्तु की निवृत्ति सत्य में होती है अतः **'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या..'** क्योंकि जगत माया का कार्य है, दृष्टान्त :- दृश्य होने से जैसे स्वप्न द्रष्टा में स्वप्न, कारण - कार्य सम्बन्ध होने से जैसे स्वर्ण में आभूषण, अध्यासरूप होने से जैसे रज्जु में सर्प का अध्यास ।	Imp

10	10 Jan + Feb	28	⊕			**सीताजी द्वारा भ०राम का निनि० स्वरूप निरूपण** ‘रामं विद्धि परम ब्रह्म सच्चिदानंद अद्वययं..’ हे हनुमान राम का निनि० स्वरूप परम ब्रह्म है यानि प्रकृति से परे, सबसे बड़े, असीम, सत्-चित्-आनंद, एक अद्वितीय हैं, नाम-रूप दो उपाधियाँ हैं राम इन उपाधियों से रहित व इनके भीतर भी और बाहर भी हैं तथा सभी जीवों की आत्मा, स्वप्रकाश अखंड प्रकाशवान **सीताजी का स्वरूप** :: ‘माम् विद्धि मूल प्रकृतिं..’ जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार करने वाली मैं मूल प्रकृति हूँ, मुझे ही माया कहते हैं किन्तु मुझ माया का मायापति राम से कभी सम्बन्ध नहीं होता। राम के सानिध्य मात्र से मुझमें सत्ता-स्फूर्ति आजाती है व मैं जगत रूप में परिणित हो जाती हूँ ।सभी कर्म मुझ माया यानि दे०इ०म०बु०प्रा०में हैं राम का निनि० स्वरूप अकर्म है रामकथा	3
11	11 Jan + Feb	50	⊕			हे अर्जुन! मेरा वास्तविक स्वरूप सच्चिदानंद है व मेरी माया से ये चराचर जगत उत्पन्न होता है अतः जगत असत्-जड़-दुःखरूप है। जीव की व्यष्टि निद्रा क्षण मात्र में अद्भुत् स्वप्न जगत उत्पन्न कर देती है तथा समष्टि निद्रा मेरी माया है जो क्षण मात्र में जागृत जगत-अनंतकोटि ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति, पालन संहार कर देती है इस माया को देखकर जीव अपना स्वरूप भूल जाता है। .. **माया की महिमा** - ऋषि और मल्लाह-कन्या की कथा .. **निद्रा सबकी माता** - काशी के राजा एवं ज्ञानीसाधु की कथा	
12	12 Jan + Feb	34	⊕			**अदभुत् रामायण** :: सहस्त्रमुख रावण की कथा	
13	13 Jan + Feb	44	⊕	⊕		**सृष्टि के आदि में एक अद्वितीय ब्रह्म ही था नानात्व कुछ भी न था** फिर रज्जु में सर्पवत्, पुरुष में छायावत् माया का प्रादुर्भाव हुआ। जैसे रज्जु के अज्ञान से मन्द अन्धकार में सर्प प्रतीत होने लगता है ऐसे ही रज्जु के समान ब्रह्म है और ये जो माया है ये रज्जु में सर्प के समान है अतः जिस प्रकार रज्जु सत्य है और सर्प झूठा है उसी तरह ब्रह्म सत्य और जगत झूठा है। जगत छायारूप है और छाया झूठी व स्वयं उत्पन्न हो जाती है किन्तु छोटा बालक / अज्ञानी छाया को सत्य मानता है और सयाना बालक / ज्ञानी छाया के यथार्थ यानि झूठे स्वरूप को जानता है .. सृष्टिक्रम .. ब्रह्म → अव्यक्त / माया → महत् तत्त्व / समष्टि बुद्धि → अहं तत्त्व / समष्टि मन → पंचतन्मात्रा → पंचभूत → अखिलं जगत ।	
14	14 Jan + Feb	26	⊕			भगवान राम और सीता जगत के माता-पिता हैं इनसे ही जगत उत्पन्न होता है, इन्हीं में रहता व लीन होता है। ब्रह्म और माया से सृष्टि होती है। राम ब्रह्म/पुरुष हैं व सीता माया/प्रकृति हैं। संतान माता-पिता के वर्ण की ही होती है अतः जगत सीता-राम का ही स्वरूप है। सकल चराचर जगत मेरी संतान होने से मुझे प्रिय है किन्तु तन-मन-वाणी से सेवा करने वाला भक्त मुझे सर्वा -धिक प्रिय है व ये भक्त ही मेरे भगवत्धाम् जाने के अधिकारी हैं।	
15	15 Jan + Feb	45	⊕	⊕		सृष्टिक्रम :: सृष्टि के आदि में एक अद्वितीय भगवान ही थे दूसरा कोई नहीं था। उस परमात्मा से अथवा हमारी चेतन आत्मा से आकाश का प्रादुर्भाव हुआ, आकाश → वायु → अग्नि → जल → पृथ्वी → औषधियाँ → अन्न → वीर्य → पुरुष । शुद्ध ब्रह्म से नहीं अपितु मायोपाधिक ब्रह्म/ईश्वर से सृष्टि होती है। ब्रह्म → माया → पंचभूत → पंचभूतों के पंचीकरण से २५ तत्त्व वाले स्थूल देह बनते हैं तीनों शरीर रचना का सविस्तार निरूपण	
16	16 Jan + Feb	31	⊕	⊕	⊕	सीता-राम जगत के माता-पिता हैं, इन्हीं का नाम माया-ब्रह्म व पुरुष-प्रकृति भी है व ये ही जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार करते हैं **सीताराम का स्वरूप** वेद शास्त्र गीता रामायण आदि सभी भगवान की वाणी हैं, ये स्वर-व्यंजनरूप सीता का स्वरूप है तथा इनका जो अर्थ है वह राम है। नाम के बिना निर्गुण अथवा सगुण दोनों ही रूप का ज्ञान नहीं होता, सभी नाम सीता का रूप है। राम सच्चिदानंदघन सर्वत्र व्यापक ‘ब्रह्म’ हैं और सीता ‘माया/प्रकृति’ हैं। सीताराम दोनों मिलकर ही जगत की उत्पत्ति करते हैं, दोनों ही संसार के कण-कण में समाये हैं अतः सारा संसार सीताराम का ही स्वरूप है। राम शब्द सीता है तथा इसका अर्थ सच्चिदानंद ब्रह्म राम है, जलरूप राम हैं तरंगरूप सीता है। पुरुष राम हैं व छाया सीता है। सीता/छाया राम/पुरुष से उत्पन्न होती है, जगत की उ०पा०स० करती है और पुनः राम में लीन हो जाती है **सीता का स्वरूप** - छाया के समान जड़ है, छाया न स्वयं को जानती है और न दूसरे को किन्तु द्रष्टा राम के अंश हम स्वयं को भी जानते हैं और दृश्य को भी क्योंकि द्रष्टा हैं। सारा दृश्य जगत सीता का परिवार है, ये जड़ शरीर दृश्य हैं जो देखते नहीं और हम दिखाई नहीं पड़ते केवल देखते हैं अतः द्रष्टा और दृश्य दो पदार्थ हैं। दृश्य जगत नाशवान है और द्रष्टा-साक्षी व्यापक ब्रह्म अविनाशी है। जीवरूप से राम ही सब शरीरों में बैठकर देख रहे हैं यानि हम द्रष्टा और दृश्य शरीर, जगत में ये दो ही हैं। सीता राम में समा जातीं हैं तो एक राम ही शेष रहते हैं वैसे ही ये शरीर सदा नहीं रहेगा वह राम में समा जायेगा और अंत में राम ही शेष रह जायेगा।	** Imp **
17	17 Jan + Feb	41	⊕	⊕	⊕	सामवेद/छा०उ०/६टा अध्याय **आरुणि-श्वेतकेतु सम्वाद/ब्रह्म विद्या का उपदेश** हे पुत्र! एक ऐसी विद्या है जिस केवल एक के ज्ञान से सब कुछ जाना जाता है यानि अज्ञात ज्ञात हो जाता है, अनसुना सुना हुआ व अनदेखा देखा हुआ हो जाता है, क्या तुम वह विद्या जानते हो? जैसे एक माटी के जानने से संसार भर के घट-मठ जान लिये जाते हैं क्योंकि घट-मठ माटी से पृथक नहीं हैं, घट के कण-कण में माटी व्याप्त है। माटी के कार्य सब माटी ही तो हैं, कारण से कार्य भिन्न नहीं होता, दृष्टांत - तरंग जल से अथवा आभूषण स्वर्ण से अलग नहीं हैं। कारण सत्य है व कार्य मिथ्या होता है तथा कार्य की निवृत्ति अपने कारण में ही होती है। ‘नाम-रूप’ संसार अपने कारण ब्रह्म से भिन्न नहीं है यानि ‘अस्ति-भाति-प्रिय’ ब्रह्म ही है। ज्ञानी लोग प्रत्येक घट-मठ में माटी, आभूषण में स्वर्ण अथवा तरंग-बुलबुलों में जल को ही देखते हैं अर्थात् संसार से ‘अस्ति-भाति-प्रिय’ निकाल देने पर नाम-रूप संसार कुछ शेष नहीं रहेगा। कारण ही सत्य तथा कार्य कल्पित है, सच्चि० ब्रह्म ही सत्य कारणरूप है	** Imp **
18	18 Jan + Feb	28	⊕	⊕		भगवान राम और सीता जगत के माता-पिता हैं इन्हीं दोनों से ये सारी सृष्टि होती है। सीता प्रकृति और राम सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण पुरुष हैं तथा प्रकृति/माया असत्-जड़-दुःखरूप है। प्रकृति छायारूप है जो पुरुष से उत्पन्न होती है व उसी में रहती और लीन हो जाती है। छायारूप माया/प्रकृति दृश्य है, राम की सत्ता-स्फूर्ति पाकर माया में कम्पन/कर्म उत्पन्न हो जाता है और वह अद्भुत कार्य करती है, वह स्वयं जगत के रूप में परिणित हो जाती है। जगत माया का परिणाम तथा ब्रह्म का विवर्त है जैसे रज्जु के अज्ञान से भासित सर्प रज्जु का विवर्त है व अज्ञान ही सर्प के रूप में परिणित हो जाता है। ब्रह्म का स्वरूप रज्जु के समान और जगत झूठा सर्प के समान है। ब्रह्म का स्वरूप सच्चिदानंद तथा जगत असत्-जड़-दुःखरूप एवं विकारी है। छायारूप माया ब्रह्म से उत्पन्न होती है व उसी में लीन हो जाती है .. सृष्टिक्रम .. ईश्वर-अंश जीव अविनाशी चेतन आनंदरूप है तथा शरीर माया का कार्य विकारी और विनाशी है। **माया और ब्रह्म दो ही चीज़ हैं** - ये शरीर माया है तथा शरीर में रहने व शरीर को देखने वाला द्रष्टा-साक्षी आत्मा ही ब्रह्म/राम है। ये दोनों साथ-२ रहते हैं पर सदा नहीं रहते, छाया के समान ये शरीर ब्रह्म/ पुरुष में लीन हो जायेगा और ब्रह्म का जन्म होता नहीं, एक ब्रह्म ही शेष रहता है।	** Imp **
19	19 Jan + Feb	43	⊕			**सामवेद :: छा०उ० :: ७तवाँ अध्याय :: नारद सनतकुमार सम्वाद** :: नारदजी द्वारा अपनी विद्याध्ययन का सविस्तार वर्णन	
20	20 Jan + Feb	35	⊕			वेद के अनुसार **ब्रह्म ज्ञान के ४ साधन / कृपायें** :: १. ईश्वर कृपा २. वेद कृपा ३. गुरु कृपा ४. आत्म कृपा	
21	21 Jan + Feb	31	⊕	⊕	⊕	**गीता - १३/१-२ ::** ये शरीर क्षेत्र है और जो शरीर के भीतर रहता है, शरीर को देखता व जानता है वह क्षेत्रज्ञ है। क्षेत्र को ज्ञान नहीं है तथा क्षेत्रज्ञ ज्ञानवान है। जीव के और मुझ ईश्वर के भी तीन शरीर हैं। आँखों से दिखाई देने वाला स्थूलशरीर है जो पंचीकृत पंचभूतों से बना है। इसके भीतर १६ तत्त्वों वाला अपंचीकृत पंचभूतों से बना सूक्ष्मशरीर है। इसके भी भीतर एक तीसरा कारणशरीर है **‘अपने वास्तविक स्वरूप जीवात्मा को न जानना’**, इस अज्ञान को ही कारणशरीर कहते है। ये जड़ शरीर जीवात्मा के वस्त्र हैं पुराने होने पर जीव इन्हें छोड़ देता है व देहधारी इनसे अलग ही रहता है। जीव के समष्टि स्थू०शरीर मिलकर मेरा एक शरीर होता है-‘विश्व विराट’, सभी जीवों के सू०शरीर मेरे सूक्ष्मशरीर-‘हिरण्यगर्भ’ में जुड़े है तथा जीवों के जितने अज्ञान-अविद्या रूप कारणशरीर हैं वे मेरे कारणशरीर-‘अव्याकृत’ में जुड़े है। समष्टि-व्यष्टि सभी शरीर क्षेत्र हैं और इन सबके भीतर बैठकर सबकी आँखें से देखने वाला क्षेत्रज्ञ मैं ही हूँ। मैं ही शरीर के भीतर **‘आत्मा’** व बाहर परिपूर्ण **‘परमात्मा’** हूँ। सारा दृश्य क्षेत्र है और इनका द्रष्टा-साक्षी मैं क्षेत्रज्ञ हूँ, ये मुझ ईश्वर का मत है। अतः जगत के समस्त शरीर भगवान के शरीर हो गये और इन्हें देखने वाले स्वयं भगवान हो गये। क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ अर्थात् विकारी प्रकृति और पुरुष को तत्त्व से जानना ही ज्ञान है।	
22	22 Jan + Feb	35				**गीता - १५/१६-२० ::** १६ इस संसार में क्षर और अक्षर दो पुरुष हैं। जगत में सभी भूत प्राणी क्षण-क्षण में विनाश को प्राप्त हो रहे हैं-ये क्षर हैं तथा जो कूट या निहाई के समान स्थिर रहे उसे कूटस्थ कहते हैं, जगह-२ आत्मा को कूटस्थ कहा गया है जो कूट की तरह अचल और सर्वत्र व्याप्त है। आत्मा अविनाशी है क्योंकि अजन्मा है। कूटस्थ का दूसरा अर्थ कपट अथवा छल है। ये माया/प्रकृति कपटरूप है जो सत्/भगवान को ढॉककर झूठा जगत दिखा देती है जिस प्रकार मेघ सूर्य को ढ्क लेते हैं। ये मायाकृत शरीर ही दिखाई देते है और अज्ञानी लोग इन शरीरों को ही अपना स्वरूप मान लेते हैं। आत्मा/परमात्मा अकर्म और द्रष्टा-साक्षी	

			⊕	⊕	⊕	है। ये जगत **क्षर** व निद्रा/प्रकृति **अक्षर** है अर्थात् कारणरूप प्रकृति/निद्रा अपने कार्य क्षर-जगत की अपेक्षा से अक्षर है १७ क्षर-अक्षर दोनों से ऊपर **उत्तम पुरुष** है वह दोनों से भिन्न अनंत-अखंड ज्ञान है उसे ही तत्त्व, भगवान और परमात्मा कहते है। जो तीनों लोकों में व्यापक एवं इनों लोकों का आधार-अधिष्ठान है वह अविनाशी प्रकृति से परे पुरुष परमात्मा परमेश्वर है १८ अर्जुन! जो क्षर-अक्षर यानि इस संसार और प्रकृति से परे सच्चिदानंद पूर्ण पुरुष है वह मैं ही हूँ इसलिये लोक और वेद में **पुरुषोत्तम** नाम से विख्यात हूँ १९ अर्जुन जो कोई भी जीव मुझे इस प्रकार से पुरुषोत्तम जानता है वो असम्मूढ़ यानि अज्ञानता से रहित है वह सब प्रकार से मेरा ही भजन कर रहा है। वह सब कुछ जानता है, उसे कुछ भी जानना शेष न रहा २० हे निष्पाप अर्जुन! ये अत्यंत गोपनीय शास्त्र मैंने तुझसे कहा है, इस ज्ञान को जिसने जान लिया उसे (कर्म-उपासना) कुछ भी करना, जानना या पाना शेष नहीं रहा, वह पूरा ज्ञानवान एवं कृत्-कृत्य हो गया। हमारा आत्मा और परमात्मा का एकत्व बोध हो गया। हमारा आत्मा सच्चिदानंद ब्रह्म है और जितना भी संसार है वह कार्य-कारण अथवा क्षर-अक्षर रूप माया है। जागृत-स्वप्न क्षर/कार्य है और गाढ़निद्रा अक्षर/कारण है। जा०-स्व० का संसार निद्रा से उत्पन्न होता है व उसी में लीन भी हो जाता है। कार्य-कारणरूप 'जा०-स्व०-सु०' तीनों माया मात्र हैं इन तीनों से जो परे है वह पुरुषोत्तम ब्रह्म है, अर्जुन! वही तू भी है। हमारे-तुम्हारे शरीर/इ०म०बु०प्रा०/जा०स्व०सु०/स्थू०सू०का० ये सब क्षर और अक्षर माया है इन इनों से ऊपर ४था हमारा तुरीय स्वरूप है जो इन इनों को देखने वाला इनसे बिल्कुल अलग है वह एकरस ज्ञान-प्रकाश हमारा तुम्हारा आत्मा है अतः ये ही निश्चय करो कि मैं द्रष्टा-साक्षी आत्मा हूँ और बाकी सब क्षर-अक्षर रूप माया है ← ऐसा भगवान श्रीकृष्ण ने बताया	oo Imp oo
23	23 Jan + Feb	32	⊕			५ मातायें :: १. जननी २. जन्म भूमि ३. गऊ माता ४. गंगा माता ५. वेद माता - भगवान की वाणी श्रुति-स्मृति	
24	24 Jan + Feb	28	⊕			**गीता ४/१७-१८ ::** अर्जुन! कर्म विकर्म और अकर्म को भी जानना चाहिये क्योंकि कर्म की गति बहुत गहन है, बड़े-२ विद्वान भी नहीं जानते। वेद विहित कर्मों को 'कर्म' तथा वेद विरुद्ध कर्मों को विकर्म कहते हैं। श्रुति-स्मृति ही भगवान की आज्ञा है, वही धर्म/पुण्य/सत्कर्म है **कर्म :: सामान्य कर्म ::** १ अहिंसा २ सत्य ३..	1
25	25 Jan + Feb	31	⊕	⊕		वेद कहता है **'सत्यमेव जयते'** - सत्य की ही जय होती है झूठ की कभी नहीं। सत्य एक परमब्रह्म परमात्मा है और ये संसार झूठा है। जहाँ सत्य और धर्म है वहीं जीत है तथा असत्य और अधर्म की हार होती है। यही दर्शाने के लिये भगवान विष्णु शेष नाग के साथ राम-लक्ष्मण रूप में अवतरित हुए तथा उनके द्वारपाल जय-विजय ने रावण-कुम्भकरण बनकर रामलीला में भाग लिया। रामलीला केवल शिक्षा और विनोद के लिये होती है यह बताने के लिये कि अधर्म करने वाले की हार होती है और सत्य/धर्म की जीत। राम-रावण के तो केवल कपड़े मात्र हैं भीतर से तो सबमें एक परमात्मा ही है। वास्तव में तो **'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरा'** -हमारा जीवात्मा सत्य है और देहादि दृश्य संसार झूठा है इसका नाश होगा। हमारे तुम्हारे देह माया के खेल हैं ये लीला के लिये बने हैं। व्यवहार में भी और परमार्थ में भी सत्य-धर्म की जीत होती है असत्य हार जाता है। जीवात्मा सत्य है, ये देह असत्य एवं नाशवान हैं। ये द्वैत दृश्य माया-छाया मात्र है अतः झूठा है पुरुष सत्य है। ये शरीर जड़ हैं व हम ज्ञान स्वरूप हैं। ये मायाकृत् देह हमही से प्रकट होते हैं, हमही इन्हें देखते हैं फिर ये हमही में समा जाते हैं फिर सत्य भगवान ही शेष रह जाते हैं और वही हमारा-तुम्हारा स्वरूप है। हम देखने वाले आत्मा ही सत्य हैं और ये शरीर मिथ्या है।	oo Imp oo
26	26 Jan + Feb	37	⊕			**गीता ४/१७-१८ ::** अर्जुन! कर्म विकर्म और अकर्म को भी जानना चाहिये क्योंकि कर्म की गति बहुत गहन है, बड़े-२ विद्वान भी नहीं जानते। वेद विहित कर्मों को 'कर्म' तथा वेद विरुद्ध कर्मों को विकर्म कहते हैं। श्रुति-स्मृति ही भगवान की आज्ञा है, वही धर्म/पुण्य/सत्कर्म है **कर्म :: सामान्य कर्म ::** १ अहिंसा २ सत्य ३ अस्तेय ४ ब्रह्मचर्य ५ अपरिग्रह ६ ..	2
27	27 Jan + Feb	31	⊕	⊕	⊕	सृष्टि के आदि में एक सच्चि० ब्रह्म ही थे। रज्जु में सर्प के समान, पुरुष में छाया के समान एक माया का प्रादुर्भाव हुआ इसी को प्रकृति अथवा स्वभाव कहते हैं। माया ने शुद्ध-सत्व की प्रधानता से विद्या और मलिन-सत्व की प्रधानता से अविद्या का रूप धर लिया, फिर ब्रह्म का विद्या में प्रतिबिम्ब/आभास पड़ा जो सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान ईश्वर और अविद्या में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब अल्पज्ञ जीव कहलाया, उपाधि भेद से सर्वज्ञता-अल्पज्ञता होगयी जबकि व्यापक ब्रह्म का प्रतिबिम्ब दोनों में समान ही है केवल प्रकट होने के साधन/उपाधि में भेद है इस प्रकार जीव और ईश्वर हो गये : अधिष्ठान ब्रह्म+विद्या माया+प्रतिबिम्ब = **ईश्वर**, अधिष्ठान ब्रह्म+अविद्या माया+प्रतिबिम्ब = **जीव** : **ब्रह्म का स्वरूप 'सच्चिदानंद' है और महावाक्य कहता है 'तत्त्वमसि',** हे! जीव वही तू है। जीव-ईश्वर का ब्रह्म से एकत्व सिद्ध करने के लिये भाग-त्याग लक्षणा की जाती है, **लक्षणा ३ प्रकार** की होती हैं १. **जहत** = 'गंगा में गऊ का बाड़ा है' जिसका अभिप्राय है कि किनारे पर गऊशाला है, यहाँ सम्पूर्ण वाच्यार्थ का त्याग करके अन्य का यानि किनारे का ग्रहण होता है अतः यहाँ तत्त्वमसि में यह लक्षणा नहीं घटती क्योंकि सम्पूर्ण (ब्रह्म और विद्या/अविद्या माया+प्रति० दोनों) के त्याग के बाद कोई अर्थ नहीं घटता २. **अजहत** = श्रोणः धावति - लाल रंग दौड़ता है, अभिप्राय है कि लाल रंग का घोड़ा दौड़ता है, इसमें कुछ त्याग नहीं हुआ अपितु लाल रंग के साथ घोड़ा भी ले लिया गया अतः ये अजहत लक्षणा भी ब्रह्म से जीव-ईश्वर की एकता में नहीं घटेगी क्योंकि ब्रह्म और माया दोनों बने हुए हैं यानि वाच्यार्थ पूर्ववत् बना है और अधिक का ग्रहण हो गया ३. **भाग-त्याग** = इसमें माया की उपाधि होने से विद्या-अविद्या दोनों ही मिथ्या हैं तथा उनमें पड़ा प्रति० भी मिथ्या है अतः मिथ्या का बाध करने से सत्य स्वरूप शुद्ध ब्रह्म ही शेष रहेगा जैसे दर्पण के हटाने से हमारा प्रतिबिम्ब भी हट जाता है केवल हमही शेष रहते हैं अतः जीव-ईश्वर का सच्चास्वरूप अधिष्ठान ब्रह्म है जैसे दर्पण में दीखने वाला हमारा मुख झूठा है क्योंकि वह तो दर्पण में प्रति०है, सच्चा मुख तो हमारे साथ हमारे सिर में है अतः हमारा सच्चा स्वरूप ब्रह्म ही है।	oo Imp oo
28	28 Jan + Feb	35	⊕	⊕		**गीता ४/१७-१८ ::** अर्जुन! कर्म विकर्म और अकर्म को भी जानना चाहिये क्योंकि कर्म की गति बहुत गहन है, बड़े-२ विद्वान भी नहीं जानते। वेद विहित कर्मों को 'कर्म' तथा वेद विरुद्ध कर्मों को विकर्म कहते हैं। श्रुति-स्मृति ही भगवान की आज्ञा है, वही धर्म/पुण्य/सत्कर्म है **कर्म :: सामान्य कर्म ::** १ अहिंसा २ सत्य ३ अस्तेय ४ ब्रह्मचर्य ५ अपरिग्रह ६ अक्रोध ७ गुरु सुश्रुषा ८ शौचं ९ सन्तोषं १० आर्जवम् ११ अमानित्वं १२ अदम्भित्वं १३ आस्तिक्त्वं, **विकर्म** :: निषिद्ध कर्म,**अकर्म** :: हमारा-तुम्हारा आत्मा अकर्म है क्योंकि वह निनि० द्रष्टा-साक्षी चेतन है जो शरीर के भीतर बैठ कर दे०इ०म०बु०प्राणों को देखता है। सभी कर्म प्रकृति के कार्य दे०इ०म०बु०प्राणों में हैं। ये शरीर ९ द्वार का पुर है व हम इसमें द्रष्टा-देही के रूप में रहते हैं। अर्जुन जो ज्ञानी है वही जानता है कि कर्म केवल इन्द्रियों में होते हैं जैसे आँखें देखतीं हैं, कान सुनते हैं, वाणी बोलती है...आदि परन्तु मैं कुछ नहीं करता, मैं द्रष्टा-साक्षी मात्र हूँ। प्रकृति के गुणों से दे०इ०म०बु०प्राण बने हैं इन्हीं में कर्म हैं, हमारा आत्मा प्रकृति से परे द्रष्टा- साक्षी मात्र है। आत्मा अचल नित्य सनातन प्रकृति का आधार-अधिष्ठान है, आत्मा में कर्म ही नहीं हैं तो इसे कौन बाँधेगा, कर्म ही बन्धन का कारण होते हैं, आत्मा तो नित्य मुक्त है।	3
29	29 Jan + Feb	28	⊕	⊕		**गीता ४/१७-१८ ::** अर्जुन! कर्म विकर्म और अकर्म को भी जानना चाहिये क्योंकि कर्म की गति बहुत गहन है, बड़े-२ विद्वान भी नहीं जानते। वेद विहित कर्मों को 'कर्म' तथा वेद विरुद्ध कर्मों को विकर्म कहते हैं। श्रुति-स्मृति ही भगवान की आज्ञा है, वही धर्म/पुण्य/सत्कर्म है **कर्म :: विकर्म :: अकर्म** :: हमारा-तुम्हारा आत्मा अकर्म है क्योंकि वह निनि० द्रष्टा-साक्षी चेतन है जो शरीर के भीतर बैठ कर दे०इ०म०बु०प्राणों को देखता है। आत्मा कर्म-विकर्म रूपी संसार का अधिष्ठान है। जितने भी कर्म हैं वह प्रकृति के गुणों में हैं। अज्ञानी दे०इ०म०बु०प्राण को अपना स्वरूप मानकर स्वयं को कर्ता-भोक्ता मानते हैं और फिर जन्म-मरण के बन्धन में पड़ जाते हैं। आत्मा अजन्मा और अकर्म है। जो आत्मा को अकर्ता जानता है तथा अकर्म में कर्म और कर्म में अकर्म को देखता है वही ज्ञानी है यानि जीवात्मा के रूप में आत्मा को दे०इ०म०बु०प्रा० में सर्वत्र व्यापक द्रष्टा-साक्षी के रूप में देखता है तथा अपनी आत्मा में सारा संसार को अध्यस्थ देखता है ऐसा मनुष्य बुद्धिमान है एवं योगी है, उसे कुछ भी करना, पाना, जानना शेष नहीं। उसने सब कुछ कर लिया, पा लिया, जान लिया, वह सर्वथा मुक्त है। प्रतिदिन आने-जाने वाली जा०स्व०सु० माया है तथा मैं उसे देखने वाला द्रष्टा-साक्षी हूँ, जो स्वयं को ऐसा जानता है वह सभी बन्धनों से सर्वथा मुक्त है।	4
30	30 Jan + Feb	33	⊕	⊕		सृष्टि के आदि में एक सच्चि० परमात्मा ही थे फिर पुरुष में छाया के समान भगवान में माया का प्रादुर्भाव हुआ जिसने विद्या-अविद्या का रूप धर लिया फिर विद्या-माया में ब्रह्म के आभास ने ईश्वर तथा अविद्या-माया में ब्रह्म के आभास ने जीव का रूप धारण किया। माया और उसमें ब्रह्म का आभास दोनों ही कल्पित हैं। ईश्वर और जीव दोनों ने सृष्टि की। ईश्वर अपनी माया अथवा ईक्षण मात्र से संसार हो गया और फिर जीव रूप से प्रत्येक शरीर में प्रविष्ट कर गया - इतनी सृष्टि ईश्वर की है तथा	

						'जा०-स्व०-सु०-बन्ध-मोक्ष' - इतनी सृष्टि जीव की है। सब जीवों की 'जा०-स्व०-सु०-बन्ध-मोक्ष' अलग-अलग होती है। जो जीव साधन-चतुष्टय सम्पन्न होकर गुरु के पास जाकर श्रवण-मनन-निधिध्यासन करता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है।	
31	31 Jan + Feb	30	⊕	⊕	⊕	सृष्टि के आदि में एक सच्चि० परमात्मा ही थे फिर पुरुष में छाया के समान भगवान में माया प्रकट हुई जिसने विद्या-अविद्या का रूप धर लिया फिर विद्या-माया में ब्रह्म का आभास **ईश्वर** तथा अविद्या-माया में ब्रह्म का आभास **जीव** कहलाया। ये निद्रा ही अविद्या/माया है। समष्टि निद्रा ईश्वर की माया हो गयी जिससे सारी सृष्टि होती है। ईश्वर अपनी माया अथवा ईक्षण मात्र से संसार हो गया और फिर जीव रूप से प्रत्येक शरीर में प्रविष्ट कर गया - इतनी सृष्टि ईश्वर की है तथा 'जा०-स्व०-सु०-बन्ध-मोक्ष' इतनी सृष्टि जीव की है। हमारी व्यष्टि-निद्रा शक्ति हमें बिना हुए भी अद्भुत स्वप्न दिखा देती है, तथा ईश्वर की समष्टि -निद्रा/ब्रह्म की माया शक्ति अनंत कोटि ब्रह्माण्ड और सारे संसार की स्थिति-पालन-संहार बिना हुए ही दिखा देती है किन्तु जब ब्रह्म ज्ञान होता है तो कहीं कुछ नहीं है। निद्रा मूल माया है जिसमें जा०-स्व० दोनों नहीं होते, हम जा०-स्व०-सु० तीनों को देखने वाले व इनसे अलग हैं। भगवान की माया से हम स्वयं को जा०-स्व०-सु० ही मान लेते हैं। हमें जा०-स्व०-सु० का द्रष्टा जानो, हमारा स्वरूप तुरीय/चौथा है। वस्तुतः हम स्त्री-पुरुष शरीर नहीं हैं अपितु हम स्त्री-पुरुष को देखने वाले जीवात्मा हैं। द्रष्टा तो दृश्य से अलग ही होता है। भगवान की अद्भुत माया से जा०-स्व० के स्त्री-पुरुष ही हम स्वयं को मान लेते हैं तथा सु०/निद्रा को ही अपना स्वरूप मान लेते हैं। 'जा०-स्व०-सु०' इतनी ही माया है, हम इन तीनों से अलग 'चौथे' इनके द्रष्टा हैं। सुषुप्ति **'कारण-माया'** है और जागृत-स्वप्न **'कार्य-माया'** है। हम तो माया को देखने वाले माया से अलग हैं अतः हम माया नहीं हो सकते। स्त्री-पुरुष को देखने वाला स्त्री-पुरुष तो हो नहीं सकता। भगवान की वाणी वेद कहता है कि **'यतोवा इमानी भूतानि जायन्ते..'** यानि जो जा०-स्व०-सु० को देखता है वह ब्रह्म है और हे! जीव **'तत्त्वमसि'** वही तू है। जा०-स्व०-सु० मेरी माया है।	** Imp **
32	32 Jan + Feb	30	⊕	⊕		अर्जुन! जगत का माता पिता मैं हूँ तथा धाता और पितामह भी हूँ यानि **मैं जगत का अभिन्न निमित्तोपादान कारण हूँ,** दृष्टान्त :- मकड़ी, लोम तथा पृथ्वी से औषधियों की उत्पत्ति, ऐसे ही मुझ अविनाशी पुरुष से ये संसार उत्पन्न होता है, मैं बाहर से कोई सामग्री नहीं लेता हूँ तथा स्वयं में ही इसे धारण भी करता हूँ अतः मेरी प्राप्ति के साधन **ओंकार** व ओंकार का विस्तार **वेद** भी मैं ही हूँ। साधन भी मैं हूँ और साध्य भी मैं ही हूँ। अर्जुन! मुझ अनंत अखण्ड आनंद सिन्धु में माया रूपी पवन के निमित्त से जगत रूपी लहरें उत्पन्न और विलीन होती हैं। मैं सर्वरूप भगवान, एकरूप भी हूँ तथा अनेकरूप भी हूँ। मणियों में सूत की भाँति मैं सर्वत्र ओतप्रोत हूँ। जड़-चेतन सम्पूर्ण जगत सब राम का ही रूप है। कारण भी राम है और कार्य भी राम है। एकरूप जल तथा अनेकरूप तरंग - सब जल ही है।	
33	33 Jan + Feb	31	⊕	⊕		सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंदघन **परमात्मा** ही थे। सर्वप्रथम पुरुष में छाया के समान **माया** यानि भगवान की इच्छा/ उनकी अव्यक्त नामनी शक्ति प्रकट हुई → **महत् तत्त्व**/स०बुद्धि → **अहं तत्त्व**/स०मन → **पंच तन्मात्राऐं** (शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध) → **पंच महाभूत** (आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी) → **अखिलं जगत** (मनुष्य पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत देव-दानव सूर्य-चन्द्र आदि) । ब्रह्म अथवा पुरुष से उत्पन्न छाया तो झूठी होती है, ऐसे ही छाया से प्रकट छाया यानि पंचभूतकृत जगत भी सत्य नहीं हो सकता। ये सब (पंच)भूत जीव को लग गये हैं और जीव को अपने परिवार में मिलाकर उन्हें दे०इ०म०बु०प्रा० ही बना दिया है। ईश्वर की अनुकम्पा होती है तो जीव को अपना सच्चा-शुद्ध स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म प्रकट होता है। जीवात्मा स्त्री-पुरुष नहीं है, हम तुम जीव हैं, हम ये शरीर नहीं हैं, ये शरीर पंचभूतों का पसारा है व हम इन भूतों के द्रष्टा हैं। विपरीत क्रम से ये सब लय हो जाते हैं और हमारा सत्य स्वरूप ब्रह्म ही शेष रहता है। जीवात्मा के रूप में परमात्मा ही व्यापक है। परमात्मा अखण्ड अविनाशी हैं। हम शरीरों को जानते हैं पर शरीर हमें नहीं जानते। निष्प्रपंच ब्रह्म में ब्रह्म को बताने के लिये ही सृष्टि का अध्यारोप और अपवाद किया गया है। जो बना और मिट गया वह माया है। **'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या....',** देखने वाला ब्रह्म है व दृश्यमान जगत (जा०-स्व०-सु०) छाया है, झूठा है। हमारा स्वरूप द्रष्टा सच्चिदानंद ब्रह्म है जो सदा रहता है।	oo ** oo
34	34 Jan + Feb	31	⊕			**आनंद रामायण - मनोहरकाण्ड** में **'श्री राम जय राम जय जय राम'** महामंत्र का उल्लेख है। इस मंत्र की ऐसी महिमा है कि इसका प्रतिदिन २१ बार जप करने से 'ब्रह्म हत्या' जैसे जघन्य अपराध से भी जीव मुक्त हो जाता है। यद्यपि भगवान के नाम की अपार महिमा है किन्तु यही नाम गुरुमुख से प्राप्त होने पर मंत्र बनकर कई गुना अधिक प्रभाव शाली हो जाता है क्यों कि गुरु मंत्र के साथ उसका अर्थ भी बताते हैं जिससे अज्ञान रूपी सिंह का नाश हो जाता है। इस प्रकार अर्थ के ज्ञान सहित प्राप्त **गुरुमंत्र का जप 'वाणी-मन-बुद्धि'** के साथ करना ही अभीष्ठ है यानि जप में वाणी से उच्चारण हो, मन से इष्ट का ध्यान व बुद्धि से अर्थ का ज्ञान हो ... हे अर्जुन ! सब शरीरों के भीतर मैं ही जीवात्मा के रूप में व्याप्त हूँ और शरीर के बाहर मैं ही परमात्मा हूँ। सब शरीर मेरी माया क्षण मात्र में से बना देती हैं। ये शरीर देवालय हैं और इनमें जो देखने वाला जीव है वह साक्षात् शिव/आत्मा/मैं ही हूँ क्योंकि मैं ही देखता हूँ, मैं एक अद्वितीय आकाशवत् व्यापक हूँ। ये देह दिखाई देने वाले मन्दिर हैं और इनमें देखने वाला जीवरूप देव मैं ही हूँ। माया से बने इन शरीरों को ज्ञान नहीं है, इनको देखने वाला निनि० ब्रह्म अद्रष्टो द्रष्टा है। भगवान अपनी माया से सब शरीर बना देते हैं और उनमें बैठकर स्वयं ही देखते हैं, **दृश्य माया है और द्रष्टा ब्रह्म है।**	* *
35	35 Jan + Feb	32	⊕	⊕	⊕	**: माया, ब्रह्म और ३ सत्तायें :** :: ब्रह्म-माया, ईश्वर-जीव-जगत, कर्म-भक्ति-ज्ञान, जागृत-स्वप्न-सुषुप्ति...क्या हैं? ये सब वेद बताता है। इस समय जा० अवस्था है, एक दिन यानि २४ घंटों में जा०-स्व०-सु० तीनों अवस्थाऐं बीत जाती हैं। जागृत अवस्था अधिक समय लगभग १८ घंटे रहती है शेष ६ घंटों में स्वप्न और गाढ़ निद्रा दोनों हो जाती हैं। जागृत को **'व्यवहारिक'** और स्व०+सु० को **'प्रातिभासिक'** सत्ता कहते हैं जो अगले दिन भी नहीं रहती, वह थोड़ी ही देर के लिये प्रतीति मात्र है, ये बिल्कुल झूठी है और ब्रह्म की **'पारमार्थिक'** सत्ता है यानि वह परम् सत्य है। अपने सत्य स्वरूप को जानकर हम जन्म-मरण से मुक्त हो जाते हैं क्योंकि पारमार्थिक स्वरूप सदा रहता है अतः हमारा परम् सत्य स्वरूप ब्रह्म है वह सदा रहता है पर जा०-स्व० थोड़े काल के लिये ही होते हैं । जागृत का जगत स्वप्न की तरह झूठा नहीं है, वह वर्षों तक रहता है, उसमें ही सब व्यवहार होता है इसमें ही सत्संग से 'ब्रह्म-माया-ईश्वर-जीव-जगत' का ज्ञान होता है। जागृत में ही जीव अपने जन्म-मरण के बन्धन को जानता है और इसी अवस्था में अपने स्वरूप-ज्ञान अथवा ब्रह्म-ज्ञान से अपने को मुक्त भी मानता है। स्वप्न और सुषुप्ति में कोई भी व्यवहार नहीं होता। जागृत में जीव के शरीरों की अधिक उम्र देखने में आती है १०० वर्ष तक भी ये शरीर रहते हैं .. व्यवहारिक-सत्ता में 'अहं' का अर्थ शरीर होता है यानि 'अहं' माने 'मैं स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य आदि' और पारमार्थिक-सत्ता में 'अहं' का अर्थ ब्रह्म है। अज्ञान में जीव देह को ही अहं मानता है क्योंकि वह अपने ब्रह्म स्वरूप को नहीं जानता अतः इसमें 'मैं' का अर्थ शरीर होता है। पारमार्थिक-सत्ता में जब ज्ञान होता है तब 'अहं' का अर्थ ब्रहम है - 'अहं ब्रह्मास्मि'।यद्यपि व्यवहारिक सत्ता का 'मैं' शरीर के रहते हुए बना रहता है परन्तु यह ज्ञान भी रहता है कि मेरा पारमार्थिक स्वरूप ब्रह्म है। प्रारब्ध पर्यन्त ये शरीर रहेगा तो शरीर में 'मैं' का व्यवहार भी रहेगा परन्तु ज्ञानी जानता रहता है कि मेरा व्यवहारिक शरीर हमेशा नहीं रहेगा पर पारमार्थिक स्वरूप सदा रहेगा। जागृत अवस्था में ही यह ज्ञान होता है कि स्वप्न में जो शरीर हैं वे प्रतीति मात्र हैं, बिल्कुल झूठे हैं तथा ब्रह्म मेरा पारमार्थिक स्वरूप है क्योंकि वह सदा रहता है। *अपने को **'परमसत्य'** तथा अपना परमार्थ-स्वरूप **'ब्रह्म'** जानते रहो और जब तक शरीर है तब तक यथावत् व्यवहार करते रहो व क्योंकि ज्ञान पश्चात भी पिता-पुत्र गुरु-शिष्य आदि का व्यवहार तो बना ही रहेगा। ये व्यवहारिक शरीर प्रारब्ध पर्यन्त रहता है और प्रारब्ध के पूरा होने पर अपने शरीर की तथा जगत के शरीरों की प्रतीति भी खत्म हो जाती है।* ज्ञान होने के बाद भी ये शरीर प्रारब्ध पर्यन्त रहता है पर इसका पुनर्जन्म नहीं होता जैसे भुना हुआ चना। ज्ञानी के शरीर का आगे जन्म नहीं होगा क्योंकि अज्ञानरूपी अंकुर ज्ञान से नष्ट हो गया किन्तु वह दूसरों को ज्ञान देने के काम आ सकता है। हमारे-तुम्हारे शरीर ईश्वर के संकल्प से रहते हैं यानि उतनी ही आयु होती है और बीच में यदि ज्ञान हो गया तो यह संसार तो समाप्त हो गया, भस्मीभूत हो गया परन्तु प्रारब्ध पर्यन्त ये दिखाई पड़ता रहता है, ईश्वर संकल्प पूरा होते ही इस शरीर का नाश यानि मृत्यु हो जाती है।	** Very Imp **
36	36 Jan + Feb	32	⊕	⊕		सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद परमात्मा ही था दूसरा कोई नहीं था फिर उस परमात्मा से पुरुष में छाया के समान माया का प्रादुर्भाव हुआ। उस सच्चि०परम्ब्रह्म परमात्मा अथवा हमारा-तुम्हारा आत्मा से → आकाश → वायु → अग्नि → जल → पृथ्वी → औषधियाँ → अखिलं जगत .: **स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर का सविस्तार वर्णन** :. इस प्रकार माया द्वारा अन्न से सब संसार बन गया। आँखों से दिखाई देने वाला २५ तत्त्वों का **स्थूल शरीर** है जो पंचभूत के पंचीकरण से तथा उसके भीतर १६ तत्तवों का **सूक्ष्म शरीर** है जो अपंचीकृत पंचभूतों से बना है। तीसरा अज्ञान-अंधकार रूप **कारण शरीर** है 'मैं ब्रह्म को नहीं	

						जानता' ये अज्ञान ही कारण शरीर है। इन तीनों शरीरों से पृथक हम इन्हें देखने वाले थे हैं। शरीर हमारे हैं पर हम शरीर नहीं हैं। कपड़ों की भाँति इन तीन शरीरों को पहनने वाले हम जीवात्मा हैं - जो ३ को गिन देता है वह थ था तो स्वयं सिद्ध है क्योंकि हम ही ज्ञानवान हैं व इनों शरीरों को तो ज्ञान है नहीं, ज्ञान चेतन है। इन्हीं तीन शरीरों के अन्तर्गत **३ अवस्थायें** हैं - जागृत में स्थूल शरीर, स्वप्न में सूक्ष्म शरीर तथा सुषुप्ति कारण शरीर है। पाँचकोष भी इन्हीं के अन्तर्गत हैं।	
37	37 Jan + Feb	28	⊕	⊕		भगवान से सृष्टि के आदि में सर्वप्रथम **ओंकार** का प्रादुर्भाव हुआ। जब ओंकार परमब्रह्म में समाया था तब इसका नाम 'परा वाणी' था। जब भगवान की बोलने की इच्छा हुई व ओंकार उनके मन में आया तो उसका नाम 'पश्यन्ति' हुआ कण्ठ में आने पर 'मध्यमा' हुआ और जब मुँह से बाहर आकर वह स्वर-व्यंजन के रूप में बिखर गया तो 'बैखरी' कहलाया। इनसे सब नाम और रूप बन गये। **'नाम-रूप' अथवा शरीरों का ही नाम संसार है** - कुछ भगवान के व कुछ जीवों के और स्वयं भगवान ही उनमें बैठकर देख रहे हैं। ओंकार में अकार-उकार-मकार ३ मात्रायें हैं जिनसे वह 'सत्-रज-तम्' ३ गुण एवं 'सात्विक, राजसिक, तामसिक' ३ वृत्ति भी धारण करता है। ओंकार फिर 'ब्रह्मा-विष्णु-महेश', तीन वेद, 'स्थू०-सू०-का०' तीन शरीर एवं 'जा०-स्व०-सु०' ३ अवस्थाऐं भी बन गया। ओंकार को ज्ञान तो है नहीं क्योंकि वह स्वर-व्यंजनरूप अक्षर है। ओंकार भगवान का सर्वश्रेष्ठ नाम भी है। ओंकार **इदं-पद** से स्वयं को तथा **तद्-पद** से भगवान को बताता है। ओंकार कहता है कि जा०-स्व०-सु०या कारण जगत अर्थात् सभी दिखाई देने वाला दृश्य मेरा स्वरूप है, ये **'इदं'** है। मैं ब्रह्म को नहीं जानता परन्तु जिसे मैं नहीं जानता पर जो मुझे जानता है वह **ब्रह्म** है - इस प्रकार ओंकार ब्रह्म को **'तद्-पद'** से बताता है। तद्-पद से वह यह भी बताता है कि ब्रह्म 'सत्-चित्-आनंद' स्वरूप है। हे! जीव वही तेरा भी स्वरूप है क्योंकि तू भी तो दिन-रात और जा०-स्व०-सु० को जानता है अतः तू भी ब्रह्म ही है। तेरी अखण्ड दृष्टि है, हमारी-तुम्हारी ज्ञान-दृष्टि का कभी लोप नहीं होता क्योंकि जीव अजन्मा और अविनाशी है। जीवात्मा का जन्म नहीं होता अतः उसकी मृत्यु भी नहीं होती। इन शरीरों का जन्म हुआ है, चाहे जीव अथवा ईश्वर किसी के भी हों उनकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। मैं ईश्वर भी इन शरीरों को बचा नहीं सकता। ओंकार कहता है कि जो ब्रह्म है, हे! जीव वही तेरा भी स्वरूप है। जा०-स्व०-सु मेरा स्वरूप है और मुझे ज्ञान नहीं है पर तू मुझे जानता है, मुझे जानने वाला भगवान ही ब्रह्म है। ये शरीर जड़ हैं, हम चेतन हैं अतः हम ही इन्हें जानते हैं। ये ३ शरीर हमारा-तुम्हारा स्वरूप नहीं हैं, हमारा स्वरूप तो जा०-स्व०-सु को जानने वाला सच्चिदानंद ब्रह्म है।	
38	38 Jan + Feb	31	⊕			अर्जुन मेरे **४ प्रकार के भक्त** हैं आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी १. आर्त भक्त का मुझ पर पूरा विश्वास होता है, दृष्टान्त - गजेन्द्र, द्रौपदी, प्रहलाद - दुःखी भक्त की भगवान रक्षा करते हैं।	
39	39 Jan + Feb	32	⊕	⊕		ब्रह्म नि०नि० एवं एक अद्वितीय है, वेद ब्रह्म को 'अध्यारोप और अपवाद' प्रक्रिया से बताता है यानि जिससे ये जगत उत्पन्न होता है, जिसमें रहता है व जिसमें लीन हो जाता है, वह ब्रह्म है। झूठ से सत्य की प्राप्ति हो जाती है जैसे झूठा संसार सत्य को बता देता है। **ब्रह्मोपनिषद में सृष्टि क्रम** :: सर्वप्रथम ब्रह्म/पुरुष में छाया के समान **माया** यानि भगवान की इच्छा/ उनकी अव्यक्त नामनी शक्ति प्रकट हुई → **महत् तत्व**/स०बुद्धि → **अहं तत्व**/स०मन → **पंच तन्मात्राऐं** (शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध) → **पंच महाभूत** (आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी) → **अखिल जगत** (मनुष्य पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत देव-दानव सूर्य-चन्द्र आदि) ←→इस दृश्य जगत के विपरीत क्रम से लय होने पर एक ब्रह्म ही शेष रहता है। ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है - इस प्रकार मिथ्या जगत से सत्य ब्रह्म का ज्ञान होता है। सत्य की उत्पत्ति नहीं होती व जगत छाया के समान है जो ब्रह्म से उत्पन्न होकर फिर ब्रह्म में ही समा जाता है क्योंकि झूठा सत्य में समाकर सत्यरूप ही हो जाता है। दृश्यमान जगत जड़ एवं नाशवान है तथा द्रष्टा चेतन ब्रह्म अविनाशी है।	
40	40 Jan + Feb	26	⊕	⊕		**ध्यानबिन्दु उपनिषद** में **'अजपा गायत्री'** का वर्णन है उसे जपना नहीं पड़ता।यह गायत्री तुरन्त ही ब्रह्म का ज्ञान कराती है। निद्रा में मन और बुद्धि लीन हो जाते हैं किन्तु स्वाँस चलता रहता है इस मंत्र का जप सोते में भी स्वयं ही चलता रहता है। हमारी स्वाँस 'हँकार' से बाहर जाती है और 'सँकार' से भीतर प्रवेश करती है। **'हँकार'** यानि **'अहं सः'** = *'मैं वह ब्रह्म हूँ'* तथा **'सँकार'** यानि **'सो अहं'** = *'वह ब्रह्म मैं हूँ'*। २४ घंटे में जीव २१,६०० बार इस मंत्र को जपता है। ये अजपा नाम की गायत्री है - इसमें केवल मनसे ध्यान करना होता है कि इस मंत्र का जप हो रहा है, स्वाँस बता रही है कि **'अहं सः'-'सो अहं'** - ये मंत्र बता रहा है। योगियों को ये सदा मोक्ष देने वाली है। इसके समान संसार में कोई विद्या नहीं है, जप नहीं है, पुण्य नहीं है। इस मार्ग से चलने से ब्रह्म के निरामय यानि दोष रहित स्वरूप को जीव पा लेता है। इसी को **'सोहं'** मंत्र भी कहते हैं। हर समय यानि बैठे-२ लेटे-२ इस मंत्र का ध्यान करना पड़ता है कि अहं सः - सोहं यानि 'अहं ब्रह्मास्मि'। यह मंत्र जन्म-मरण के दुःख को मिटा देती है तथा मोक्ष पद देता है यानि वह ब्रह्म रूप ही हो जाता है। यही अन्तिम मंत्र है वेदांत का जिसे जपते हुए राजा परीक्षित ने देह त्यागा था । See # CD 3 :: 15-06-06 also	SeeCD # 58-A : NOV 32.mp3
41	41 Jan + Feb	28	⊕	⊕		**प्रयागराज तीर्थ त्रिवेणी** में स्नान करने से मृत्योपरान्त मुक्ति मिलती है। कर्म-उपासना-ज्ञान रूपी वेद **आध्यात्मिक त्रिवेणी** है। संत-समागम चलता-फिरता तीर्थ सबको सब दिन सुलभ है। श्रद्धा-भक्ति व आदर से यदि इस प्रयाग का सेवन किया जाय तो सभी क्लेष हट जाते हैं। भगवान का उपदेश ये वेद हैं। वेद का पहला काण्ड **कर्मकाण्ड** 'यमुनाजी' हैं जो सभी पापों का नाश करती हैं, इसमें 'विधि और निषेध' दो प्रकार के वचन हैं। दूसरा **भक्तिकाण्ड** रामजी की भक्तिरूपी 'गंगाजी' हैं जिसमें स्नान व जलपान करने से जीव सब पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को चला जाता है। तीसरा ज्ञानकाण्ड ही 'सरस्वती' हैं जिसमें 'ब्रह्म माया जीव ईश्वर' का विचार एवं प्रचार है। इस प्रकार ये वेद रूपी त्रिवेणी संतों में बह रही है व संत चलते-फिरते प्रयाग हैं जिसमें स्नान करने से **ब्रह्म ज्ञान** द्वारा **'सद्य मुक्ति'** मिलती है क्योंकि अज्ञान के कारण हमें अपने ब्रह्म स्वरूप का विस्मरण हो गया है। वेद रूपी त्रिवेणी हमें अपना ब्रह्म स्वरूप का ज्ञान कराकर सद्य मुक्ति प्रदान करती है।	*
42	42 Jan + Feb	31	⊕			**४ प्रकार के भक्त** :: १. आर्त २. अर्थार्थी ३. जिज्ञासू ४. ज्ञानी :: १. आर्त भक्त :- ये केवल भगवान का भरोसा करता है, दृष्टान्त :- गजेन्द्र, प्रहलाद, द्रौपदी, ध्रुव। आर्त भक्त मेरे छोटे बालक के समान होता है जिसका भगवान माँ की तरह प्रतिपल देखभाल करते हैं।	1
43	43 Jan + Feb	28	⊕	⊕	⊕	वेद शास्त्र गीता रामायण भागवत सभी एक स्वर से कहते हैं कि भगवान के 'नि०नि० और स०सा०' दो रूप हैं व शास्त्र अग्नि का दृष्टान्त देते हैं। एक अग्नि काष्ठ में व्यापक है और एक आँखों से देखने में आती है। व्यापक अग्नि को निनि० तथा प्रकट अग्नि को ससा० कहते हैं। इसी प्रकार ब्रह्म का भी विचार करना चाहिये। निनि० देखने में नहीं आता और ससा० देखने में आता है। ईश्वर के सभी अवतार ससा० रूप है और जो इन सबमें व्यापक, सच्चिदानंदघन, एक अविनाशी है वह देखने में नहीं आता क्योंकि आँखें आकार को ही देखती हैं। जीव का स्वरूप भी सच्चिदानंद ब्रह्म है इसलिये देखने में नहीं आता और स्त्री-पुरुष, वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र आदि शरीर हैं अतः दिखाई पड़ते हैं। निनि० स्वरूप से हम देख रहे हैं पर दिखाइ नहीं देते और ससा० शरीर दिखाई देता है पर देख नहीं सकता क्योंकि उसे ज्ञान नहीं है। सगुण-साकार नि०नि० से ही प्रकट होते हैं और फिर नि०नि० में ही समा जाते हैं अतः उत्पत्ति-नाशवान है, जैसे निनि० अग्नि ईंधन में व्यापक है किन्तु ये अव्यवहारी है यानि उसमें उष्णता और प्रकाश नहीं है और जब हम अग्नि को प्रकट करते हैं तो वह हमें गर्मी और प्रकाश देता है। संसार का व्यवहार ससा० अग्नि से ही चलता है निनि० से नहीं । व्यापक अग्नि दीपक, तेल, बाती सबमें है किन्तु दीपक जलने पर ही उससे प्रकाश होता है यानि प्रकट/ससा० अग्नि से ही व्यवहार होता है। दीपक जलते ही अँधेरा प्रकाश रूप हो जाता है। वही अग्नि सूर्य में प्रकट होती है तो रात का अँधेरा भाग जाता है यानि वह प्रकाश रूप ही हो गया। इसी प्रकार 'अज्ञान' रात्रि के समान है, अज्ञान के कारण हमारा-तुम्हारा निनि० स्वरूप समझ में नहीं आता। ससा० तो हमें दिखाई पड़ता है अपना भी और ईश्वर का भी किन्तु निनि० स्वरूप हम नहीं जान पाते हैं। अज्ञान के नाश होने पर हमें अपना निनि० स्वरूप स्पष्ट दिखाई पड़ेगा परन्तु अज्ञान के नाश के लिये ज्ञान की आवश्यकता है। गीता रामायण भागवत् माचिस के समान हैं जिन्हें खिंचाकर गुरु ही छुआता है हमारी बुद्धिरूपी बत्ती में। गुरु वेद के महावाक्य आदि सुनाकर हमारी बुद्धि में ज्ञान का प्रकाश करते हैं व ज्ञान से अज्ञान दूर हो जाता है। अभी तक हम अपने निनि० स्वरूप को नहीं जानते थे पर गुरु के बताने से हमने जाना कि सच्चिदानंद ब्रह्म जो सबको देखता है वही द्रष्टा-साक्षी स्वरूप हमारा भी है। हम जानते हैं कि हम देखते हैं और देखना ज्ञान के बिना बनता नहीं अतः हम ज्ञानरूप हैं और ये दृश्य संसार अज्ञानरूप है। शरीर अज्ञानरूप हैं व हम ज्ञानस्वरूप इन्हें देख रहे हैं। जा०-स्व०-सु० तीनों को हम देख रहे हैं अतः हमारा स्वरूप अनुभव से भी ज्ञानरूवरूप सिद्ध होता है परन्तु गुरु के अतिरिक्त वेद के महावाक्य रूपी माचिस को खिंचाकर	** Very Imp

						दूसरा कौन हमारी बुद्धिरूपी दीपबाती को प्रज्ज्वलित कर सकता है। फिर शिष्य भी गुरु बन जाता है और इसप्रकार से गुरु-परम्परा चलती रहेगी। Also see Q&N III / Pg 20	**
44	44 Jan + Feb	25	⊕	⊕		**४ प्रकार के भक्त** :: १. आर्त २. अर्थार्थी ३. जिज्ञासू ४. ज्ञानी :: २. अर्थार्थी - जो संसार की वस्तु चाहते हैं इनको मैं इनकी इच्छानुसार स्त्री पुत्र धन राज्य दे देता हूँ ३. जिज्ञासू - ये संसार की इच्छा वाला नहीं है, वह कहता है कि मुझे वह तत्त्व बतायें जिससे मैं जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाऊँ। उसे तीनों लोकों का राज्य अथवा इन्द्रादि का पद नहीं चाहिये क्योंकि उन्हें भी दुःख और मृत्यु प्राप्त होती है ४. ज्ञानी - महाभारत के युद्ध के आरम्भ में भगवान कृष्ण द्वारा अर्जुन को गीता के उपदेश के बाद भगवान ने अर्जुन से पूछा - क्या तूने एकाग्र मन से मेरा उपदेश सुना? तब अर्जुन ने कहा-अपने स्वरूप के अज्ञान से यानि मैं अपने स्वरूप को भूल गया था इसी से मुझे मोह था-संसार में सत्-सुख बुद्धि ही मोह है। हे अच्युत ! अपने स्वरूप से कभी च्युत न होने वाले, आपकी कृपा से मुझे मेरा स्वरूप याद आ गया कि मेरा स्वरूप सच्चिदानंद है। ये नश्वर संसार मेरा स्वरूप नहीं है, अब मैं अपने सच्चिदानंद स्वरूप में ही स्थित हूँ। अब आप जो भी आज्ञा देंगे मैं वही करूँगा। मुझे अब कुछ भी जानना शेष नहीं है। इस पर भगवान बोले - अपना स्वरूप जानते हुए कि मैं दृष्टा-साक्षी आत्मा हूँ तू युद्ध कर यानि इ०म०बु० से अपने स्वधर्म के अनुसार कर्मकर। सभी कर्म दृश्य/प्रकृति के कार्य दे०इ०म०बु०प्रा० में होते है, हमारा स्वरूप तो ज्ञान/द्रष्टा है।	2
45	45 Jan + Feb	28	⊕	⊕		भगवान राम द्वारा शबरी को **'नवधा भक्ति'** का उपदेश - १. **संतों का संग** २. **मेरी कथा में प्रेम** - भगवान के 'निनि० एवं ससा०' दोनों स्वरूपों का कथन ही भगवत् कथा है। शास्त्रों में सच्चिदानंद के निरूपण में अग्नि का दृष्टान्त दिया है, वह भी एक निनि०-व्यापक तथा दूसरी ससा०-प्रकट अग्नि है। व्यापक अग्नि अव्यवहारी है, प्रकट अग्नि में ही सब व्यवहार होते हैं। ससा०-अग्नि, निनि०-अग्नि से ही प्रकट होती है और पुनः अपने वास्तविक स्वरूप निनि०-अग्नि में ही समा जाती है। इसी प्रकार से भगवान के निनि० और ससा०-स्वरूप है। संतों की रक्षा, दुष्टों का दलन एवं धर्म की पुनर्स्थापना के लिये भगवान के अवतार निनि०-स्वरूप से ही प्रकट होते हैं।	a
46	46 Jan + Feb	29	⊕	⊕	⊕	**४ प्रकार के भक्त** :: १. आर्त २. अर्थार्थी ३. जिज्ञासू ४. ज्ञानी :: ४. ज्ञानी - हे अर्जुन ! आत्म ज्ञान से ही सर्व दुःखों से निवृत्ति व परम् सुख प्राप्ति सम्भव है। संसार में 'क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ' दो ही पदार्थ हैं तीसरा कुछ नहीं है। ये शरीर को क्षेत्र और शरीर के भीतर जो जीवात्मा है उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं जैसे खेत और किसान, खेत को ज्ञान नहीं है और किसान ज्ञानवान है। सभी शरीरीं में क्षेत्रज्ञ यानि शरीरों को जानने वाला जीवात्मा तू मुझे ही जान। जीवात्मा के स्थूल-सूक्ष्म-कारण तीन शरीर हैं जो वस्त्र के समान हैं। जागृत-अवस्था बाहर दीखने वाला स्थूलशरीररूप है, स्वप्नावस्था इसके भीतर १६ तत्त्वों का सूक्ष्मशरीररूप है व सुषुप्ति-अवस्था इसके भी भीतर कारणशरीररूप है। हमारा स्वरूप इन ३नों से अलग है जो इन ३नों को सिद्ध करता है अतः तीनों देह अज्ञानरूप हैं और चौथा - 'जीव' - ज्ञानवान है वह इन तीन देहों को गिनने वाला स्वयं सिद्ध है वही हमारा तुम्हारा स्वरूप है। इसी प्रकार मुझ ईश्वर के भी ३ शरीर हैं, सभी जीवों के स्थू०-सू०-का० समष्टि शरीर मिलकर मेरे क्रमशः विराट-हिरण्यगर्भ-अव्याकृत देह हैं दृ०-पीपल का वृक्ष। ये संसार भगवान का स्थूलशरीर के समान विश्व-विराट स्वरूप है। सभी जीवों के सूक्ष्म और कारण शरीर भगवान के सूक्ष्म और कारण-शरीर में जुड़े हुए हैं। मेरे समष्टि कारण-देह का नाम है 'अव्याकृत/माया/प्रकृति' और ४था मैं ब्रह्मरूप इन तीनों से अलग हूँ। अर्जुन, जीव का ४था स्वरूप **'तुरीय'** और मेरा ४था स्वरूप **'ब्रह्म'** है, उनमें भेद नहीं है, वह दोनों निनि० एक ही हैं घटाकाश-महाकाश के समान। जीवात्मा का ४था स्वरूप जन्म-मरण से रहित है, उसमें दुःख है ही नहीं वह आनंद सिन्धु है और वह ज्ञान स्वरूप है अतः जीवात्मा और परमात्मा का **'सच्चिदानंद'** स्वरूप एक जैसा ही है वह ४था है और शरीर सब उत्पत्ति-नाशवान है - जीव के भी और मुझ ईश्वर के भी, ये मेरी माया से बन जाते है। मेरी माया से ही क्षणमात्र में सारा संसार बन जाता है और मैं ही सब शरीरों में बैठकर देखने लगता हूँ। द्रष्टा-साक्षी मैं ही हूँ, जीवात्मा तो मेरा ही स्वरूप है तथा तीनों देह और तीनों अवस्था मेरी माया जानो अर्जुन। इन्हीं को क्षेत्र कहते हैं व क्षेत्रज्ञ मैं ही हूँ सब शरीरों में। अतः जीवात्मा और परमात्मा का निनि० स्वरूप एक ही है एवं ससा० शरीर भी एक ही है, भेद नहीं है न शरीरों में न शरीरों के भीतर रहने वाले जीवात्मा और परमात्मा में। फिर ये शरीर भी मुझ परमात्मा में लीन हो जाते हैं जैसा जलने वाली अग्नि बुझने पर अपने निनि० स्वरूप व्यापक अग्नि में ही समा जायेगी।	3
47	47 Jan + Feb	34	⊕	⊕		भगवान राम द्वारा शबरी को **'नवधा भक्ति'** का उपदेश - १. **संतों का संग** २. **मेरी कथा में प्रेम** - मेरी कथा सुनने से मेरे निनि० एवं ससा० स्वरूप का ज्ञान होता है। मेरा ससा०स्वरूप - अवतार और जीव का ससा० - स्वरूप स्त्री-पुरुष का शरीर है किन्तु जीव और परमात्मा के निनि० स्वरूप में भेद नहीं है। जीवात्मा और परमात्मा का अभेद दर्शन ही ज्ञान है। जन्म-मरण ससा० देह का ही होता है आत्मा का नहीं।	b
48	48 Jan + Feb	31	⊕	⊕		**४ प्रकार के भक्त** :: १. आर्त २. अर्थार्थी ३. जिज्ञासू - अर्जुन जिज्ञासू भक्त है जिसे ब्रह्म तत्त्व जानने की प्रबल इच्छा है। जैसे प्यासा केवल पानी चाहता है उसी प्रकार जिज्ञासू भक्त भगवान के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहता, वह दुःख अज्ञान और मृत्यु से मुक्ति चाहता है ४. ज्ञानी - ज्ञानरूपी अग्नि पुण्य-पाप सभी कर्मों को भस्म कर देती है, पाप-पुण्य बीज हैं तो जन्म-मरण अवश्य होगा। बीज के नष्ट होने से अजर-अमर-अविनाशी भगवत् धाम मिल जायेगा। सत्संग ही ज्ञान का सुलभ साधन है :- .. .. *बड़े भाग्य पाये सतसंगा, बिनहिं प्रयास होय भव भंगा ।।* ..	4
49	49 Jan + Feb	33	⊕	⊕		**भगवान राम द्वारा शबरी को 'नवधा भक्ति' का उपदेश** - ३. गुरु के चरण कमलों की सेवा ४. भगवान के गुणगान करना ५. गुरु से मंत्र लेकर उसका दृढ़ विश्वास सहित जप ६. दे०इ०म०बु०प्रा० सबको संसार से हटाकर भगवान में लगाना व निरन्तर सत्संग ७. चराचर जगत को मेरा स्वरूप देखें तथा संतों को मुझसे अधिक जानो ८. अपनी नीति न्याय मर्यादा की कमाई में संतोष और दूसरों में दोष न देखो क्योंकि उससे द्वेष बुद्धि होती है ९. सरल स्वभाव बनो व सबसे निष्कपट व्यवहार करो, सदैव मुझमें विश्वास रखो तथा सुख में अभिमान अथवा दुःख आने पर विषाद मत करो :: *भगवान राम ने शबरी से कहा कि इनमें से एक भी होना कल्याणकारी है परन्तु तुझमें तो सभी हैं।*	c
50	50 Jan + Feb	32	⊕	⊕	⊕	**४ प्रकार के भक्त** :: १. आर्त २. अर्थार्थी ३. जिज्ञासू - अर्जुन जिज्ञासू भक्त है जिसे ब्रह्म तत्त्व जानने की प्रबल इच्छा है :: **आत्मा/ब्रह्म का स्वरूप निरूपण ::-** जा०-स्व०-सु० को जो प्रकाशता है उसे ब्रह्म कहते हैं, अर्जुन वही तेरा स्वरूप है। ब्रह्म सत्-चिद-आनंद स्वरूप स्वभाव से ही है तो निवृत्ति किसकी की जाय तथा सच्चिदानंद तेरा स्वरूप ही है तो प्राप्त किसे किया जाय। परमात्मा और जीवात्मा में भेद नहीं है-*'ईश्वर अंश जीव अविनाशी..'* इसलिये अपने स्वरूप में जागना ही कर्तव्य है। असत्-जड़-दुःखरूप ये संसार तुझे छूता नहीं है। आत्मा अविनाशी अव्यक्त अविकारी अचल अचिन्त्य है किन्तु आत्मा चित्त के चिन्तन को जानता है। ब्रह्म जानने से प्राप्त है और न जानने से अप्राप्त है, वस्तुतः ब्रह्म तो जीव को सदैव ही प्राप्त है क्योंकि वह उसका स्वरूप ही है । जा०-स्व०-सु० तीनों माया हैं तथा इन तीनों को गिनने वाला ४था स्वयं सिद्ध है - वही आत्मा यानि ब्रह्म है। सब शरीरों में देखने वाला आत्मा (क्षेत्रज्ञ) एक अद्वितीय मैं ही हूँ। ये शरीर छाया के समान दिखाई पड़ता है, छाया पुरुष से निकलती है पुरुष के आश्रित रहती है और पुनः पुरुष/ब्रह्म में लीन हो जाती है। छाया ही जा०-स्व०-सु० रूपी माया है। आत्मा 'सत्' रूपा है अतः उसका कभी अभाव नहीं हो सकता तथा 'असत-जड़' जगत का कभी भाव नहीं है ४. ज्ञानी - ज्ञान होने पर जो पूर्ण हो जाता है उसकी सभी इच्छाऐं समाप्त हो जाती हैं, अपूर्ण को ही इच्छा होती है। जिसने सत्-चिद-आनंद से पूर्ण आत्मा को जान लिया है उसे कुछ भी करना, जानना या पाना शेष नहीं है। * Imp *	5
51	51 Jan + Feb	30	⊕			**४ कृपायें** :: १. ईश्वर कृपा - ८४ लाख योनियों के बाद मनुष्य शरीर प्राप्ति २. गुरु कृपा ३. वेद कृपा ४. आत्म कृपा	
52	52 Jan + Feb	26	⊕	⊕		**४ प्रकार के भक्त** ::१. आर्त २. अर्थार्थी ३. जिज्ञासू - **अर्जुन को तत्त्व ज्ञान का उपदेश** :- जा०-स्व०-सु० के रूप में जो संसार दिखाई पड़ता है इसको तू मेरी माया जान। जागृत-स्थूल माया है, स्वप्न-सूक्ष्म माया है व सुषुप्ति-कारण माया है, इन तीनों का प्रकाशक ४था ब्रह्म है - 'तत्त्वमसि' - वही तू है। ब्रह्म का स्वरूप 'सत्-चित-आनंद' है, हे अर्जुन ! वही तेरा भी स्वरूप है अतः उसमें दुःख और जन्म-मृत्यु नहीं है। जा० का जगत व्यवहारिक है जिसमें गुरु-शिष्य का व्यवहार होता है, स्वप्न का सूक्ष्म जगत प्रतिभासिक है तथा सुषुप्ति में वह भी लीन हो जाता है - इतनी ही माया है इसके आगे हमारा-तुम्हारा स्वरूप ब्रह्म है जो जा०-स्व०-सु० को प्रकाशता यानि देखता है। जो स्वयं को इस प्रकार जा०-स्व०-सु० का प्रकाशक 'ब्रह्म' जानता है वह सर्वथा मुक्त है, उसका जन्म-मृत्यु नहीं होती क्योंकि ब्रह्म व्यापक नित्य अजन्मा अविकारी है। ये देह भगवान की माया से बन गये हैं तथा इन देहों को देखने वाला आत्मा है वही हमारा स्वरूप है।	6

53	53 Jan + Feb	28	⊕			**४ कृपायें** :: १. ईश्वर कृपा - ८४ लाख योनियों के बाद मनुष्य शरीर प्राप्ति २. गुरु कृपा ३. वेद कृपा ४. आत्म कृपा :- जीव अनादि काल से सुख की खोज कर रहा है। जन्म होते ही माता-पिता से सुख की आशा करता है फिर पत्नि पुत्र धन और राज्य में खोज करता है परन्तु पत्नि पुत्र प्रजा के दुःख को अपना दुःख जानकर दुःख बढ़ता ही जाता है, सुख की खोज करते-२ वह मर जाता है क्योंकि वह सुख गलत स्थान पर खोज रहा है। भगवान कहते हैं कि ये जगत एवं दुःख मृत्यु का समुद्र है और मैं परमात्मा सुख का समुद्र हूँ पर मुझे छोड़कर जीव असत्-जड़-मृत्यु रूप संसार में सुख ढूँढ रहा है। ये संसार उत्पन्न होकर नष्ट होता रहता है, संसार में सुख नहीं है और मुझमें दुःख नहीं है अतः अर्जुन तुम्हें जिसकी इच्छा हो उसका तुम चयन करो।	
54	54 Jan + Feb	24	⊕	⊕	⊕	**४ प्रकार के भक्त** :: १. आर्त २. अर्थार्थी ३. जिज्ञासू ४. ज्ञानी :: ३. जिज्ञासू भक्त भगवान का स्वरूप ही जानना चाहता है - **अर्जुन को तत्त्व ज्ञान का उपदेश** :- अर्जुन मेरे ससा० और निनि० दो स्वरूप हैं, राम-कृष्ण अवतार आदि मेरे ससा० रूप है तथा सच्चिदानंद ब्रह्म मेरा निनि० स्वरूप है। जैसे निनि० व्यापक अग्नि अव्यवहारी है, यही अग्नि जब दीपक और ईंधन में प्रकट होती है तो उसमे सब व्यवहार होता है। व्यापक अग्नि सदा रहती है अतः सत् है एवं प्रकट अग्नि असत् है क्योंकि जो अग्नि जलती है वह बुझती अवश्य है इसी प्रकार भगवान का निनि० स्वरूप सत् है जो सदा रहता है और ससा० स्वरूप समय-२ पर साधु-ब्राह्मणों के दुःख हरने के लिये, दुष्टों के दमन के लिये एवं धर्म की रक्षा के लिये राम-कृष्ण के रूप में प्रकट होता है। भगवान का ससा० रूप भी सदा नहीं रहता, कार्य पूरा होने पर भगवान अन्तर्धान हो जाते हैं यानि अपने निनि० स्वरूप में समा जाते हैं। ऐसे ही स्त्री-पुरुष आदि रूप जीव के ससा० स्वरूप हैं जिसमें सारा व्यवहार होता है तथा जीव के भीतर बैठकर देखने वाला जीवात्मा जीव का निनि० स्वरूप है वही बाहर परिपूर्ण होकर परमात्मा कहलाता है। जीव-ईश्वर का निनि० स्वरूप अभेद है, यह अभेद ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है। जीव का वास्तविक निनि० स्वरूप सच्चिदानंद है।	7
55	55 Jan + Feb	35	⊕	⊕	⊕	सृष्टि के आदि में एक ब्रह्म ही था कोई नानात्व नहीं था फिर उस ब्रह्म से पुरुष की छाया के समान 'अव्यक्त' नामकी परमात्मा की शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ, ये शक्ति ही व्यवहारिक है जैसे व्यापक अव्यक्त अग्नि की शक्ति के प्रकट होने पर ही उष्णता और प्रकाश का व्यवहार होता है इसी प्रकार भगवान की 'अव्यक्त' नामनी शक्ति के प्रकट होने पर ही जगत रूपी व्यवहार होता है इस शक्ति के अनादि, अविद्या, त्रिगुणात्मिका, परा, माया आदि और भी नाम हैं। ये सारा संसार बिना सामग्री के क्षण मात्र में ही बन जाता है। ये संसार भगवान की छाया है जैसे दर्पण में हमारी छाया, इसका नाम माया है। ये छाया भगवान जैसी तो है पर भगवान नहीं है वह सत्य नहीं है। जैसे हमारी छाया हमसे स्वयं ही प्रकट होती है, घटती-बढ़ती है और स्वयं ही हममें लीन हो जाती है वैसे ही ये संसार छाया के समान भगवान से प्रकट होता है और भगवान में ही लीन हो जाता है ■ ब्रह्म/आत्मा → अव्यक्त - महत् तत्त्व - अहं तत्त्व - पंचतन्मात्रा - पंचभूत - अखिलं जगत - विपरीत क्रम से लय → ब्रह्म/आत्मा ■ अतः ब्रह्म ही हमारा स्वरूप है और ये जगत छाया है - **'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या'** ।।	
56	56 Jan + Feb	23	⊕	⊕	⊕	**४ प्रकार के भक्त** :: १. आर्त २. अर्थार्थी ३. जिज्ञासू ४. ज्ञानी :: ३. जिज्ञासू वह है जिसे भगवान को जानने की प्रबल इच्छा है जैसे प्यासे को पानी की, अर्जुन जिज्ञासू भक्त है वह तत्त्व जानना चाहता है जिससे वह भव बन्धन से मुक्ति पा सके। **अर्जुन को तत्त्व ज्ञान का उपदेश** :- अर्जुन ब्रह्म का स्वरूप 'सच्चिदानंद' है - 'तत्त्वमसि' - वही तेरा स्वरूप है, तुझमें और ब्रह्म में भेद नहीं है वैसे ही जैसे जल और लहर में। सबके भीतर बैठकर जो देख रहा है वह ब्रह्म है। द्रष्टा और दृश्य दो ही पदार्थ हैं इनमें द्रष्टा ब्रह्म है और दृश्य माया है। हम सबका यही अनुभव है कि हम द्रष्टा हैं, द्रष्टा दिखाई नहीं पड़ता पर देखता है और दृश्य दिखाई पड़ता है पर देखता नहीं अतः सब शरीरों में 'मैं' नामक तत्त्व ब्रह्म ही है - 'अहं ब्रह्मास्मि' - अहं नाम द्रष्टा ब्रह्म का है शरीर का नहीं, शरीर तो देखता नहीं है। नाम और रूप शरीरों में ही हैं तथा इन शरीरों में जो देखने वाला तत्त्व है 'जीवात्मा' वह स्त्री-पुरुष आदि नहीं है, वह संसार भर के नाम-रूपों में व्यापक है और देखता है इसलिये सब स्वयं को 'मैं' कहते हैं। यह 'मैं' नामक तत्त्व एक अद्वितीय है एवं सारे विश्व में व्यापक है - यही ज्ञान है, द्रष्टा को ही 'ज्ञान' कहते हैं, यही चेतन कहलाता है। जो ज्ञान यानि चिद् है वही सत् और आनंद भी है और वही सत्-चिद्-आनंद हमारा स्वरूप है। अर्जुन वह सच्चिदानंद स्वरूप 'शिव' मैं ही हूँ। शरीर अनेक हैं पर देखने वाला द्रष्टा-साक्षी आत्मा सबमें एक ही है। द्रष्टा को देव और देह को देवालय कहते हैं। हमारा स्वरूप नि०नि० है तथा शरीर स०सा० हैं। भगवान कहते हैं कि शरीर मेरी माया से एक क्षण में बन जाते हैं और मैं देखने वाला स्वयं ही इन सब देहों में विराजमान हूँ अतः हमारा तुम्हारा स्वरूप स्त्री-पुरुष नहीं है हम तो देखने वाले है। जिज्ञासू भक्त को भगवान ने यही बताया कि जो ब्रह्म है सो तू है। हमारा तुम्हारा आत्मा ब्रह्म है, मैं देह नहीं हूँ किन्तु मैं देखने वाला आत्मा हूँ - सही ज्ञान लक्षण है, सच्चा ज्ञान है। अपने को देह मानना ही अज्ञान है, देह तो जड़ यानि अज्ञानरूप हैं। द्रष्टा-साक्षी स्वयं भगवान ही सब देहों में बैठकर देख रहे हैं। जो 'मैं' नामक तत्त्व है वह ब्रह्म है। द्रष्टा और दृश्य बस ये दो ही तत्त्व हैं, सभी वेदान्तों का यही निर्णय है कि ये देह दृश्य है व इसके भीतर बैठकर देखने वाला द्रष्टा ब्रह्म है। हम सबका भी यही अनुभव हैं कि हम देखते हैं, ये देखने वाला तत्त्व सब देहों में एक ही है-यह ब्रह्म है तथा मायाकृत जड़ देह नाशवान हैं। ये भगवान कृष्ण द्वारा बताया गया ज्ञान है। बड़े पुण्यात्माओं को ही यह ज्ञान होता है। गीताज्ञान अत्यंत दुर्लभ है, भाग्यशाली ही इसे सुन पाते हैं।	8
57	57 Jan + Feb	33	⊕	⊕		भगवान सृष्टि के आदि में एक अकेले अद्वितीय थे और दूसरा कोई नहीं था, फिर उस परमात्मा से अथवा हमारी तुम्हारी आत्मा से आकाश का प्रादुर्भाव हुआ → वायु → अग्नि → जल → पृथ्वी → औषधियाँ → अन्न → पुरुष ▌ ईश्वर की इच्छा से पंचभूतों के पंचीकरण से २५ तत्त्वों के **स्थूल शरीर** बन गये, इनके भीतर १६ तत्त्व का **सूक्ष्म शरीर** है जो अपंचीकृत महाभूतों से बना है तथा इसके भीतर अपने स्वरूप का अज्ञानरूप **कारण शरीर** है . . सविस्तार ३नों शरीर की रचना . . हम शरीर नहीं हैं ये शरीर हमारे हैं, हम-आप इनसे अलग हैं। स्त्री-पुरुषादि नाम-रूप का भेद तो केवल स्थूलदेह में हैं, सूक्ष्मदेह यानि इ०म०बु० एवं अज्ञानरूप कारणदेह तो सबका एक जैसा ही है तथा हमारा-तुम्हारा जो जीव का स्वरूप है वह भी एक जैसा है। भगवान कृष्ण कहते हैं कि जीवात्मा का जन्म-मरण होता ही नहीं, मृत्यु का कारण जन्म होता है जब जन्म नहीं होता तो मृत्यु किसकी होगी ? क्योंकि आत्मा का जन्म नहीं होता इसलिये वह मरता नहीं। हम-तुम जीवात्मा हैं शरीर नहीं, ये शरीर तो पंचभूतों से बन गये हैं।	
58	58 Jan + Feb	26	⊕	⊕	⊕	भगवान राम और सीता जगत के माता-पिता हैं सम्पूर्ण सृष्टि इन्हीं से उत्पन्न होती है। सम्पूर्ण रामायण में इन्हीं दोनों का निरूपण है। राम और सीता के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान से जीव भी सर्व दुःखों से मुक्त हो जाता है और मृत्यु से भी छूट जाता है इसलिये दोनों का स्वरूप जानना अभीष्ट है . . **सीताजी का स्वरूप** :: जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार सीताजी करती हैं, भगवान राम को अत्यंत प्रिय सीताजी सब क्लेषों का हरण व परमकल्याण करने वाली हैं . . **भगवान राम का स्वरूप निरूपण** :: तुलसीदासजी द्वारा वन्दना - जिसकी महामाया के वश में ब्रह्मादि देव औ असुर हैं (ये महामाया शक्ति भगवान राम की प्रियतमा जगत जननी सीताजी ही हैं), जिसकी सत्ता से सारा संसार झूठा होते हुए भी सत्य जैसा भासता है कैसे? जैसे रज्जु में सर्प अतः सत्तावान सत्य भगवान को न जानने से झूठा संसार भी सत्य भास रहा है व मरने का भय उत्पन्न कर रहा है, जिसके चरण कमल ही इस संसार सागर से पार होने का एक मात्र उपाय हैं उन भगवान राम की मैं वन्दना करता हूँ। जो संसार के एक मात्र कारण हैं रज्जु के सर्प के समान (जैसे झूठे सर्प का कारण रज्जु थी ऐसे ही अधिष्ठान राम अध्यास रूप झूठे संसार का कारण हैं) उनका नाम सच्चि० ब्रह्म राम है, इनके के ज्ञान से सर्व दुःखों का नाश हो जाता है और परम् सुख शान्ति की प्राप्ति होती है। इन्हीं सीताराम का वर्णन सम्पूर्ण रामायण में है।	1
59	59 Jan + Feb	32	⊕	⊕	⊕	**४ प्रकार के भक्त** :: १. आर्त २. अर्थार्थी ३. जिज्ञासू ४. ज्ञानी :: ३. जिज्ञासू - उसे लोक-परलोक राज्य एवं भोगों की कोई इच्छा नहीं है वह केवल भगवान को ही चाहता है क्योंकि सारी पृथ्वी का निष्कण्टक राज्य एवं देवाधिपत्य पाकर भी वह दैहिक दैविक भौतिक ३नों तापों व जन्म-मरण से नहीं छूट सकता । देवताओं का भी पतन होता है, पुण्य क्षीर्ण हो जाने पर देवता भी देवलोक से गिरा दिये जाते हैं इसलिये सारा संसार त्यागकर जिज्ञासू को एक मात्र सच्चिदानंद परमात्मा ही चाहिये। अर्जुन ऐसा ही जिज्ञासू भक्त है जिसे भगवान के सिवा और कुछ नहीं चाहिये। सारा संसार भगवान की प्रदर्शिनी है। भगवान कहते हैं कि ऐसे भक्त को मैं अपनी आत्मा को दे देता हूँ क्योंकि सबसे अधिक उसे मैं ही प्रिय हूँ और मुझे भी ऐसा भक्त सर्वाधिक प्यारा है ४. **ज्ञानी** भक्त तो मेरी आत्मा ही है और मैं ज्ञानी की आत्मा हूँ। बहुत जन्मों के अन्त में ये ज्ञानवान मुझे प्राप्त कर लेता है। फिर इस ज्ञानी की दृष्टि में मुझ वासुदेव के अतिरिक्त अन्य कोई दिखाई नहीं पड़ता, वो सर्वत्र मुझे ही देखता है- 'वासुदेवं सर्वं' । कौन देश-काल-वस्तु ऐसी है जहाँ भगवान व्यापक नहीं हैं, भगवान कण-कण में समाये हैं। ज्ञानी की दृष्टि में चराचर जगत वासुदेव का ही स्वरूप है तथा वह सच्चिदानंद ब्रह्म ही स्वयं को समझता है। ऐसा महात्मा संसार में दुर्लभ है। भगवान कहते हैं कि जो मैं हूँ वही मेरी आत्मा ज्ञानी भक्त है। ज्ञानी भक्त को कुछ नहीं चाहिये। इसे कुछ भी करना शेष नहीं क्योंकि उसे जो करना था वह कर	9

लिया, जो पाना था वह पा लिया, जो जानना था वह जान लिया - अब उसे जानने के लिये कोई साधन नहीं करना सब साधन पूरे हुए। उसकी संसार यात्रा पूरी हो गयी। जिस उद्देश्य से ये मनुष्य शरीर पाया था भगवान को पाकर ये संसार यात्रा पूरी हुई अतः उसे परम् विश्राम मिल गया यानि जन्म-मरण के चक्र में ८४ लाख योनियों में भटकने से वह मुक्त हुआ। ज्ञानी पूर्ण भक्त है अब उसे कुछ भी वाँछित नहीं, परम् वैराग्यवान जिज्ञासू भक्त ही ज्ञानी होता है। उसका केवल भगवान में ही अनुराग रहता है व ज्ञानी आत्मा-परमात्मा का एकत्व जानकर संसार को स्वप्नवत् ही देखता है। मैं देह नहीं हूँ वरन् मैं देह को देखने वाला आत्मा हूँ - ये ही ज्ञान है। जीवात्मा का जन्म-मरण नही होता, शरीर ही जन्मता-मरता है - 'न जायते म्रियते वा कदाचिन्..' मेरी माया से संसार के शरीर बनते बिगड़ते रहते हैं और जो जीवात्मा है वो तो मैं ही हूँ सबकी आत्मा अतः जिसने अपनी आत्मा को जान लिया वह जन्म-मरण से छूटा हुआ ही है, वह शोक सागर से पार हो गया। अर्जुन ! जिसने अपनी आत्मा को जान लिया वह अपनी आत्मा में ही पूर्ण प्रेम करता है, आत्मा में ही संतुष्ट है। अब उसे कुछ भी कर्जव्य शेष नहीं। ब्रह्म हमारी आत्मा है व आत्मा ही परमात्मा है - वेद यही कहता है, और ये संसार भगवान की माया से बनता-बिगड़ता रहता है। भगवान की माया एक क्षण में ये संसार बना और मिटा देती है अतः सम्पूर्ण संसार माया मात्र है। ये माया नितान्त झूठी है जैसे पुरुष में छाया। पुरुष ही सत्य है, वही हमारा तुम्हारा स्वरूप है - 'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च' । ये भगवान श्रीकृष्ण के वचन हैं इन्हें परम् सत्य जानो व स्वयं को सच्चिदानंद आत्मा जानो तथा सभी शरीरों को माया का कार्य जानो।